

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 37 — केशी और व्योम वध

5 October 2026



मेघ-सदृश विकराल अश्व का रूप धरकर एक असुर दो बालकों के प्राण लेने व्रज की गोचर-भूमि में आ धमकता है — और व्रज का वही ग्वाल-बालक शान्त भाव से उसके मार्ग में आ खड़ा होता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध का सैंतीसवाँ अध्याय भय के दो सेवकों को एक लीलामय प्रभु के सम्मुख ला खड़ा करता है: एक कंस की सभा से गर्जना के साथ प्रकट आता है; दूसरा मित्र का वेश धरकर बालकों के खेल में चुपके से घुस आता है। इनके बीच देवर्षि नारद एकान्त में प्रभु के निकट आते हैं और आगे होने वाली लीलाओं को अपने वचनों में कह जाते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)

- अध्याय: 37 (सैंतीसवाँ अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: केशी और व्योम असुरों का वध
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: नन्द का व्रज — उसकी गोचर-भूमि और निकटवर्ती पर्वत-ढलानें
- केंद्रीय विषय: अश्वरूपधारी केशी का वध; देवर्षि नारद की एकान्त प्रार्थना एवं भविष्य-दर्शन; मायावी व्योम से गोप-बालकों का उद्धार
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 37, श्लोक 1-33
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण, दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

कंस, यह चेतान्वी पाकर कि वसुदेव के दोनों पुत्र ही उसकी नियत मृत्यु हैं, वसुदेव और देवकी को बेड़ियों में जकड़ चुका था, पहलवानों को बुला चुका था, कुवलयापीड हाथी तथा धनुष-यज्ञ की तैयारी कर चुका था, और अक्रूरजी को दोनों भाइयों को लाने भेज चुका था। उसी सभा में उसने केशी को भी एक ही आदेश देकर गोकुल भेजा था — बलराम और केशव का अन्त कर दो।

भय का अश्व व्रज में प्रवेश करता है

इस प्रकार भेजा गया और अपने स्वामी को प्रसन्न करने को उत्सुक वह दुष्टबुद्धि केशी एक विशालकाय अश्व का शरीर धरकर नन्द के व्रज में आया — मन के समान वेगवान्, बड़ी-बड़ी आँखों वाला, गुफा-सरीखे खुले मुँह और पुष्ट गर्दन वाला, और रंग में किसी महान् काले वर्षा-मेघ जैसा। उसके खुरों से पृथ्वी काँप उठती थी; उसकी अयाल के झटकों से मेघ और देवताओं के विमान छिन्न-भिन्न हो जाते थे; और उसकी हिनहिनाहट सुनकर प्रत्येक प्राणी भय से थर्रा जाता था।

वे हिकारें प्रभु के ही गाँव के लिए थीं, और वह पशु गोचर-भूमि में उस द्वन्द्व को खोज रहा था जिसके लिए भेजा गया था। अतः कृष्ण अपने जनों के आगे आ खड़े हुए और उसे युद्ध के लिए ललकारा, और उस पशु ने सिंह-सदृश गर्जना से उत्तर दिया।

केशी के साथ संग्राम

उन्हें देखते ही वह जीव — जिसके पास पहुँचना कठिन, जिसका वेग भयंकर और जिसे रोकना असम्भव था — घूमकर क्रोध में उनकी ओर दौड़ा, मुँह ऐसे फैलाए मानो आकाश पी जाएगा, और उसने कमलनयन प्रभु पर अपने पिछले पैरों से प्रहार किया। कृष्ण उस प्रहार को चुका गए, उसी के पैर पकड़कर उसे घुमाया, और तिरस्कारपूर्वक सौ धनुष की दूरी पर ऐसे फेंक दिया जैसे गरुड़ किसी सर्प को फेंक देते हैं। फिर वे ठीक पहले की भाँति खड़े रहे, मानो कुछ हुआ ही न हो।

वह अश्व होश में आया, उठा, और जबड़े फाड़कर दूसरी बार उन पर झपटा।

सः लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा
व्यादाय केशी तरसापतद्धरिम् ।
सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन्
प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥ ५ ॥

*sah labdha-samjñah punar utthito ruṣā vyādāya keśī tarasāpatad dharim so 'py asya vaktre
bhujam uttaram smayan praveśayām āsa yathoragam bile*

अर्थ: होश में आकर और क्रोध से पुनः उठकर केशी मुँह फाड़े हुए बड़े वेग से भगवान् हरि पर झपटा; और उन्होंने मुसकराते हुए अपना बायाँ हाथ उसके मुँह में ऐसे डाल दिया जैसे कोई सर्प को बिल में डाल देता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 37, श्लोक 5)



मुसकराते हुए प्रभु अपनी बाईं भुजा झपटते अश्वरूपी असुर के खुले मुँह में ऐसे डाल देते हैं जैसे सर्प को बिल में, और केशी का सारा बल उसी प्रकाश में विलीन हो जाता है।

उस भुजा पर जो दाँत पड़े, वे तत्क्षण ऐसे गिर गए जैसे तपे हुए लोहे के डंडे से टकराकर गिर जाते हैं। शरीर के भीतर प्रभु की वह भुजा बढ़ने लगी, किसी उपेक्षित रोग की भाँति फूलती हुई। असुर की श्वास रुक गई, आँखें उलट गईं, सारे शरीर पर पसीना छूट गया, और वह प्राणहीन होकर भूमि पर गिर पड़ा। पके खीरे की तरह फट चुके उस शरीर से महाबाहु प्रभु ने अपनी भुजा पुनः बाहर खींच ली। उन्होंने बिना किंचित् परिश्रम शत्रु का अन्त किया था, और वे तनिक भी गर्वित न हुए; उधर विस्मित देववासी पुष्प बरसाते हुए उनकी महिमा गाने लगे।

नारद देवर्षि एकान्त में प्रभु के पास आते हैं

तब भगवद्भक्तों में अग्रगण्य देवर्षि नारद उन कृष्ण के निकट आए, जिनके कर्मों में कोई थकान नहीं, और वहाँ बोले जहाँ कोई और न सुन सके। ‘कृष्ण, हे अचिन्त्यस्वरूप कृष्ण, योगेश्वर, लोकों के शासक! हे वासुदेव, समस्त प्राणियों के आश्रय, सात्वतश्रेष्ठ, सर्वशक्तिमान प्रभु! आप प्रत्येक प्राणी के आत्मा हैं, उनके भीतर ऐसे छिपे हुए जैसे काष्ठ में अग्नि — हृदय-गुहा में स्थित, साक्षी, परम पुरुष। अपने ही आश्रय में रहकर आपने

अपनी माया से तीन गुणों को प्रकट किया, और उन्हीं के द्वारा आप इस जगत् को रचते, पालते और पुनः अपने में समेट लेते हैं; और आपका संकल्प कभी व्यर्थ नहीं होता।’

स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ।

अवतीर्णो विनाशाय साधुनां रक्षणाय च ॥ १३ ॥

sa tvaṁ bhūdhara-bhūtānāṁ daitya-pramatha-rakṣasām avatīrṇo vināśāya sādhanām rakṣaṇāya ca

अर्थ: वही आप पृथ्वी के शासकों के रूप में जन्मे दैत्यों, प्रमथों और राक्षसों के विनाश के लिए तथा सज्जनों की रक्षा के लिए अवतीर्ण हुए हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 37, श्लोक 13)

इस एक ही पंक्ति में देवर्षि इस अध्याय के सब कुछ का कारण खोल देते हैं, और उसे एक ही करुणा के दो कार्य बताते हैं। प्रभु इसलिए अवतार नहीं लेते कि दुष्टता उनसे बड़ी हो गई, न इसलिए युद्ध करते हैं कि उन्हें कोई भय है; वे इसलिए उतरते हैं कि पृथ्वी मुकुट पहने क्रूरता से कुचली जा रही है, और जो सरल एवं धर्मपरायण जीवन जीते हैं उनका दूसरा कोई आश्रय नहीं। इस प्रयोजन के दोनों अंश यहाँ गोचारण के एक ही दिन में पूरे हो जाते हैं: कंस का अश्व हट जाता है, और गोप-बालकों का एक दल बन्द गुफा से बाहर निकाल लिया जाता है। वही एक हाथ दोनों कार्य करता है, और भक्त भयंकर प्रतीत होते कर्म को भी दूसरे रूप की रक्षा देखना सीख जाता है। इसीलिए नारदजी कृष्ण को विजय की बधाई नहीं देते; वे एक कृपा के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलायां हयाकृतिः ।

यस्य हेषितसन्त्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम् ॥ १४ ॥

diṣṭyā te nihato daityo līlayāyaṁ hayākṛtiḥ yasya heṣita-santrastās tyajanty animiṣā divam

अर्थ: बड़े सौभाग्य से अश्व के रूप में आए इस दैत्य का आपने खेल-खेल में वध कर दिया — वह, जिसकी हिनहिनाहट से डरकर अपलक देवता स्वर्ग छोड़ भागे थे। (स्कन्ध 10, अध्याय 37, श्लोक 14)



भक्तों में अग्रगण्य देवर्षि नारद एकान्त में निकट आकर उन प्रभु की स्तुति करते हैं जो क्रूरता का अन्त करने और धर्मपरायणों को आश्रय देने अवतीर्ण हुए हैं।

देवर्षि जो अभी से देख रहे हैं

फिर नारदजी ने अनागत को इतनी शान्ति से कहा जैसे कोई अपने सामने रखी वस्तु का वर्णन करता है। उन्होंने कहा कि परसों वे चाणूर, मुष्टिक तथा अन्य पहलवानों, उस हाथी, और स्वयं कंस को प्रभु के हाथों मारा जाता देखेंगे। उसके बाद शंख के रूप में रहने वाले असुर, यवन, मुर और नरकासुर का अन्त; पारिजात वृक्ष का हरण और इन्द्र का मान-मर्दन; केवल पराक्रम को ही कन्या-मूल्य बनाकर वीरों की पुत्रियों का वरण; द्वारका में राजा नृग का शाप से उद्धार; जाम्बवती के साथ स्यमन्तक मणि की प्राप्ति; और एक ब्राह्मण के मृत पुत्र का प्रभु के ही धाम से लौटाया जाना — यह सब वे देखेंगे। वे पौण्ड्रक का पतन, काशी का दहन, दन्तवक्त्र का तथा एक महायज्ञ में चेदिराज का वध, और द्वारका की वे अन्य लीलाएँ भी देखेंगे जिन्हें पृथ्वी के कवि गाएँगे। और सबसे अन्त में वे देखेंगे कि जब प्रभु अर्जुन के रथ की रास थामकर संहार में तत्पर काल का रूप धारण करेंगे, तब पूरी-पूरी अक्षौहिणियाँ उनमें समा जाएँगी।

इतनी दूर तक देख लेने पर भी देवर्षि ने अपने लिए कुछ नहीं माँगा। उन्होंने उन प्रभु से प्रार्थना की जो शुद्ध चैतन्य हैं, अपने ही स्वरूप में पूर्णतः प्रतिष्ठित हैं, जिनकी प्रत्येक इच्छा फलित होती है, और जिनके तेज से मायाजनित गुणों का प्रवाह सदा परे ही रह जाता है। और तब उन्होंने प्रणाम किया।

त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया

विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ।

क्रीडार्थमद्यात्मनुष्यविग्रहं

नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम् ॥ २३ ॥

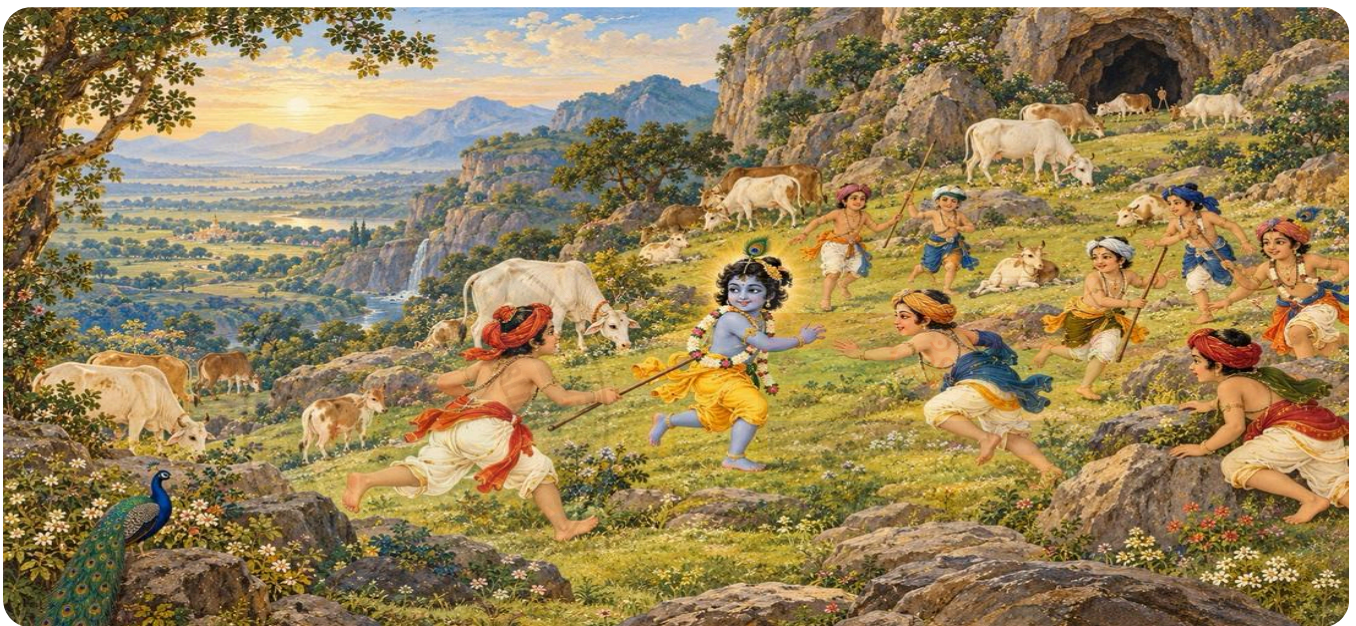
tvām īśvaraṁ svāśrayam ātma-māyayā vinirmitāśeṣa-viśeṣa-kalpanam krīḍārtham adyātta-manuṣya-vigrahaṁ nato 'smi dhuryaṁ yadu-vṛṣṇī-sātvatām

अर्थ: मैं आपको प्रणाम करता हूँ — उन ईश्वर को, जो स्वयं अपने आश्रय हैं, जिनकी माया से प्रत्येक पृथक् वस्तु रची गई है, और जिन्होंने अब यदु, वृष्णि और सात्वतों में श्रेष्ठ के रूप में लीला के लिए मनुष्य-शरीर धारण किया है। (स्कन्ध 10, अध्याय 37, श्लोक 23)

इस प्रकार यदुश्रेष्ठ कृष्ण को प्रणाम कर और उनकी आज्ञा पाकर वह भक्तश्रेष्ठ चल दिए, अपने साथ उनके दर्शन का उत्सव लिए हुए। और प्रभु, केशी को खुले संग्राम में निपटाकर, अपने प्रेमी गोप-बालकों के बीच पूर्ववत् गोचारण करने लगे, और समस्त ब्रज आनन्दित हुआ।

पर्वत की ढलानों पर एक खेल

एक दिन बालक पर्वत की ढलानों पर पशु चरा रहे थे, और वे अपना पुराना छिपने-छीनने का खेल खेलने लगे — कुछ चोर बने और कुछ रखवाले। उनमें से थोड़े भेड़ बने, और इस प्रकार वे भय की छाया से दूर साथ-साथ क्रीड़ा करते रहे।



पर्वत की ढलानों पर गोप-बालक गौएँ चराते हुए चोर, रखवाले और भेड़ का अपना निर्भय खेल खेलते हैं।

उस खेल में एक अपरिचित चुपके से आ मिला: मय का पुत्र व्योम, बड़ी-बड़ी माया-विद्याओं का जानकार, जो ग्वाल-बालक का रूप धरकर उनके बीच आया और बार-बार चोर का ही भाग चुनता रहा।

मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् ।

मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥ २८ ॥

maya-putro mahā-māyo vyomo gopāla-veṣa-dhṛk meṣāyitān apovāha prāyaś corāyito bahūn

अर्थ: मय के पुत्र महामायावी व्योम ने ग्वाल-बालक का वेश धरकर और अधिकतर चोर का अभिनय करते हुए भेड़ का भाग निभा रहे बहुत से बालकों को उठा ले गया। (स्कन्ध 10, अध्याय 37, श्लोक 28)

जिस-जिस बालक को वह चुराता, उसे पर्वत की एक गुफा में रख आता और उसका मुँह एक बड़ी शिला से बन्द कर देता, यहाँ तक कि उस दल में से केवल चार-पाँच बालक ही बाहर बचे रहे।

गुफा से उद्धार

तस्य तत् कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् ।

गोपान् नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥ ३० ॥

tasya tat karma vijñāya kṛṣṇaḥ śaraṇa-daḥ satām gopān nayantaṁ jagrāha vṛkaṁ harir ivaujasā

अर्थ: उसके इस कर्म को जान लेकर सज्जनों को शरण देने वाले कृष्ण ने, जब वह गोपों को ले जा रहा था, उसे बलपूर्वक ऐसे पकड़ लिया जैसे सिंह किसी भेड़िये को पकड़ लेता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 37, श्लोक 30)



मायावी के कार्य को तत्क्षण जानकर कृष्ण उसे बन्द पर्वत-गुफा के पास पकड़ लेते हैं और फिर शिला तोड़कर अपने सखाओं को अन्धकार से बाहर ले आते हैं।

पकड़ में आते ही असुर का छद्म वेश गिर गया और वह अपने विशाल स्वरूप में प्रकट हो गया, पहाड़ियों के बीच किसी पर्वत जैसा। अपने सारे बल के होते हुए भी वह केवल छूटना चाहता था, और छूट न सका। प्रभु ने उसे भुजाओं से थामा, भूमि पर गिराया, और देवताओं के आकाश से देखते-देखते उसका अन्त कर दिया। फिर उन्होंने गुफा का मुँह रोकने वाली शिला को तोड़ा और अपने सखाओं को उस अन्धकार से बाहर ले आए जिसमें वे बन्द कर दिए गए थे।

गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निःसार्य कृच्छृतः ।

स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥

guhā-pidhānam nirbhīdyā gopān niḥsārya kṛcchrataḥ stūyamānaḥ surair gopaiḥ praviveśa sva-gokulam

अर्थ: गुफा का आवरण तोड़कर और गोपों को उनके कष्टप्रद संकट से बाहर निकालकर, देवताओं तथा गोप-बालकों से एक साथ स्तुति पाते हुए वे अपने गोकुल में प्रविष्ट हुए। (स्कन्ध 10, अध्याय 37, श्लोक 33)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. एक अवतार, दो कृपाएँ। नारदजी प्रभु के अवतरण का प्रयोजन असुर-वृत्ति का अन्त और सज्जनों की रक्षा बताते हैं, और दोनों यहाँ सन्ध्या से पहले ही सिद्ध हो जाते हैं। जो एक ओर से संहार दिखता है, वही दूसरी ओर से आश्रय है।
2. प्रभु कभी रक्षात्मक मुद्रा में नहीं होते। केशी हत्यारे की तरह भेजा जाता है, फिर भी आगे बढ़कर द्वन्द्व के लिए ललकारते कृष्ण ही हैं। भक्त के संकट बिना बुलाए आ सकते हैं, किन्तु वे कभी बिना सामना किए नहीं रहते।
3. शुद्ध भक्त का आनन्द प्रभु की महिमा में है। नारदजी, जो समस्त भविष्य देख सकते थे, उससे कोई वरदान नहीं माँगते। वे केवल यह देखना चाहते थे कि प्रभु क्या करेंगे, और उनके दर्शन के उत्सव से समृद्ध होकर लौट गए।
4. छद्म वेश हृदयेश्वर को धोखा नहीं दे सकता। व्योम बालकों के बीच उन्हीं का वेश धरकर घूमा, और प्रत्येक प्राणी के भीतर बैठे प्रभु ने उसका कार्य तत्क्षण जान लिया। जो हम दूसरों से छिपाते हैं, वह उनसे छिपा नहीं है।
5. बन्द गुफा वे ही खोलते हैं। बालक न शिला हटा सके, न पुकार सके, न अपनी कोई सहायता कर सके; उनका सारा उद्धार बाहर से आया। अपने ही बन्धनों में बन्द जीव के लिए भी ऐसा ही है — छुटकारा उनका कार्य है, हमारा नहीं।

एक भक्तिमय चिन्तन

यहाँ हृदय में जो ठहर जाता है वह अश्व का आकार नहीं, बालक की सहजता है। उस हिनहिनाहट से स्वर्ग तक खाली हो गया था, और व्रज एक मुसकान तथा एक भुजा से बच जाता है। वह मुसकान बताती है कि जो हमारी रक्षा करते हैं, उन पर उस भार का कोई दबाव नहीं जो हमें दबा देता है। हम संकटों को इससे नापते हैं कि वे हम पर कितने बड़े दिखते हैं; वे कुछ नापते ही नहीं, क्योंकि उनसे बाहर कुछ नहीं।

दूसरी लीला अधिक शान्त है, और सम्भवतः हमारे जीवन के अधिक निकट। वहाँ कोई ब्रह्माण्डीय आतंक नहीं — केवल खेलते बच्चे, उनके बीच एक झूठा मित्र, और शिला के पीछे अन्धकार। हममें से बहुतों के सामने गोचर-भूमि में कोई असुर नहीं आता; हम बस कहीं बन्द हो जाते हैं, अपनी ही गुफा के मुँह पर रखे बोझ को हिला पाने में असमर्थ। इस अध्याय का आश्वासन यही है कि प्रभु अनुपस्थितियों को लक्ष्य करते हैं। उन्होंने खेल में से कम हुए बालकों को गिना, और जब हम कम पढ़ेंगे तब वे उसे भी देखेंगे, आएँगे और शिला हटा देंगे।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज प्रभु के सामने एक ऐसी वस्तु रखिए जिसे आप स्वयं हिला नहीं सकते — कोई आदत, कोई भय, कोई कड़वाहट जिसने आपके हृदय का कोई भाग अन्धकार में बन्द कर रखा है। उसे हटाने की योजना न बनाइए। कुछ क्षण शान्त बैठिए, उसे उनके चरणों में रखिए, और प्रार्थना कीजिए कि वे उसे अपने समय पर खोल दें। फिर ध्यान और विश्वास के साथ धीरे-धीरे जपिए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

यहाँ कृष्ण के सम्मुख दो संकट आते हैं — एक कंस के महल से गरजता हुआ, दूसरा बालकों के खेल में चुपके से घुसता हुआ — और दोनों का उत्तर उसी एक अविचल हाथ से मिलता है। उनके बीच नारदजी एकान्त में नतमस्तक होते हैं, प्रभु का प्रयोजन क्रूरों का संहार और सज्जनों की रक्षा बताते हैं, और आने वाली लीलाओं की दीर्घ शृंखला देख लेते हैं। पर्वत में बन्द बालक पुनः प्रकाश में ले आए जाते हैं, और गोकुल स्तुति के साथ अपने प्रभु को ग्रहण करता है। हम उन्हीं को दृढ़ता से थामे रहें, जो हमें डराने वाले का अन्त और अपने जनों का आश्रय — दोनों एक साथ हैं।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), सैंतीसवाँ अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-37-killing-of-keshi-and-vyoma-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट